10
श्रीमद्भगवद्गीता में मृत्यु-दर्शन एवं आत्मा का रहस्य

मनीष माणिकराव गोडे
नागपुर, महाराष्ट्र
Email : manishgode@gmail.com

सारांश :

श्रीमद्भगवद्गीता हमें मृत्यु को सहर्ष अंगीकार कैसे करें, इसकी शिक्षा भी देती है। अन्य अनेक शिक्षाओं के अलावा मृत्यु का आनंद से स्वागत करना, उससे किंचित मात्र भी भयभीत ना होना, ये सीखाती है। मृत्यु, जो की अंतीम सत्य है, उसका कैसे वरण करें, ये हमें श्रीमद्भगवद्गीता सीखती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में ऐसे अनेक श्लोक है, जिसमें मृत्यु को जीवन का एक अपरीहार्य अंग एवं एक परिवर्तनकारी प्रक्रिया कहा गया है। यह भौतिक शरीर पँचमहाभूत में समा जाता है और आत्मा किसी और शरीर में समा जाती है। यह एक अविरल और अविचल प्रक्रिया है। ऐसा माना जाता है कि जिसनें गीता को भलीभाँति समझ लिया, वह जन्म-मृत्यु के चक्र से विमुक्त हो जाता है।

मुख्य शब्द : श्रीमद्भगवद्गीता, प्रस्तानत्रयी ग्रंथ, सनातन धर्म, उपनिषद, वेद, वेदांग, जन्म-मृत्यु, आत्मा

प्रस्तवना :

[1] श्रीमद्भगवद्गीता, एक ऐसा विलक्षण ग्रंथ है, जिसका आज तक कोई पार पा ना सका। गहरे उतरकर इसका अध्ययन-मनन करने पर नित्य नये-नये विलक्षण भाव प्रकट होते रहते हैं। गीता में जितना भाव भरा है, उतना बुद्धि में नहीं आता। जितना बुद्धि में आता है, उतना मन में नहीं। जितना मन में आता है, उतना कहने में नहीं आता। जितना कहने में आता है, उतना लिखने में नहीं आता। गीता असीम है, उस पर अपने विचार लिखना आसान नहीं!

श्रीकृष्ण कहते हैं कि आत्मा के लिए न कोई जन्म है और न ही मृत्यु। जाहिर है, पदार्थ के लिए कोई मृत्यु नहीं है क्योंकि वह जीवित नहीं है। इसलिए आत्मा नहीं मरती है, और पदार्थ भी नहीं मरता। भौतिक दुनिया में केवल ये दो ऊर्जाएँ हैं।

Volume 4, Issue 1, 2025, p. 71-82, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

भूममिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥7.4॥

अर्थात्, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ये सब मेरी प्राकृत शक्ति के आठ तत्त्व हैं।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥7.5॥

अर्थात्, हे महाबाहु अर्जुन! इस अपरा प्रकृति के अतिरिक्त मेरी एक परा शक्ति भी है, जो समस्त जीवात्माएँ हैं, जो प्रकृति से संघर्ष कर रही हैं तथा ब्रह्माण्ड को धारण कर रही हैं।

[2] **आत्मा का मतलब soul नहीं होता !**

विद्वानों और आम लोगों के लिए आत्मा का अनुवाद ' soul ' के रूप में करना आम बात है। आत्मा भारतीय दर्शन और आध्यात्मिकता का मूलभूत सिद्धांत है। हिंदू धर्म में, आत्मा को निष्क्रिय मन-शरीर परिसर के भीतर एक सचेत और बुद्धिमान सिद्धांत माना जाता है। यह एक इंसान का सच्चा स्व है जो अस्थायी, नाशवान, स्थान और समय की सीमाओं के अधीन सभी चीज़ों से अलग होने पर प्रकट होता है।

आत्मा शब्द व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'अत्' या 'आप्' से हुई है अत् का अर्थ है सतत् गमन या 'जो निरंतर गति में है।' और आप् का मतलब 'व्याप्त' होना। अर्थात, आत्मा हमेशा जन्म और मृत्यु के चक्र के कारण एक शरीर से दूसरे शरीर में गति करती रहती है और यह सर्वत्र व्याप्त है। हिंदू दर्शन के मूल में आत्मा और प्रकृति के बीच का अंतर है, जबकि प्रकृति अनुकूलता के सिद्धांत पर कार्य करती है तथा विकास के अधीन है, यहाँ आत्मा अपरिवर्तनीय है और हमेशा अछूती रहती है।

भगवद गीता (2.24) में भगवान श्री कृष्ण आत्मा को सर्व गतः (सर्वव्यापी) बताते हैं। आत्मा अखंडित और अज्वलनशील है, इसे न तो गीला किया जा सकता है और न ही सुखाया जा सकता है। यह आत्मा शाश्वत, सर्वव्यापी, अपरिर्वतनीय, अचल और अनादि है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥2.24॥

क्योंकि यह हर जगह, जीवन के विभिन्न रूपों में, सबसे बड़े पौधों और जानवरों से लेकर सबसे छोटे सूक्ष्मजीवों तक में पाई जाती है। यह उस शरीर में भी व्याप्त है जिसमें यह रहती है।

तो फिर मृत्यु क्या है?

©Indira Gandhi National Open University

कृष्ण कई श्लोकों में मृत्यु के बारे में बात करते हैं और कहते हैं कि वे इसके पीछे हैं।

- मैं मृत्यु का साक्षात् रूप हूँ।

  तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
  अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥9.19॥

  मैं ही अमृत और मृत्यु हूँ, अर्थातमात्र जीवों का प्राण धारण करते हुए जीवित रहना (न मरना) और सम्पूर्ण जीवों के पिण्ड-प्राणों का वियोग होना (मरना) भी मैं ही हूँ।

- नियमों के निर्धारकों में मैं मृत्यु का स्वामी यम हूँ।

  अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
  पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥10.29॥

- मैं सर्वभक्षी मृत्यु हूँ।

  मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
  कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥10.34॥

मृत्यु में हरण करने की ऐसी विलक्षण सामर्थ्य है कि मृत्यु के बाद यहाँ की स्मृति तक नहीं रहती, सब कुछ अपहृत हो जाता है। वास्तव में वह सामर्थ्य मृत्यु की नहीं है, प्रत्युत परमात्मा की है। अगर सम्पूर्ण का हरण करने की, विस्मृत करने की भगवत्प्रदत्त सामर्थ्य मृत्यु में न होती तो अपनेपन के सम्बंध को लेकर जैसी चिन्ता इस जन्म में मनुष्य को होती है, वैसी ही चिंता पिछले जन्म के सम्बंध को लेकर भी होती। परंतु मृत्यु के द्वारा विस्मृति होने से पूर्वजन्मों के कुटुम्ब, सम्पत्ति आदी की चिन्ता नहीं होती। इस तरह मृत्यु में जो चिंता, मोह मिटाने का सामर्थ्य है, वह सब भगवान् की ही है।

मुख्य आलेख :

कृष्ण कहते हैं कि सृष्टि से पहले भी परमात्मा थे और अंत में भी परमात्मा रहेंगे, फिर बीच में दूसरा कहाँ से आया? इसलिये अमृत भी भगवान् का स्वरूप है और मृत्यु भी भगवान का ही स्वरूप है। सत् (परा प्रकृति) भी भगवान् का स्वरूप है और असत् (अपरा प्रकृति) भी भगवान् का स्वरूप है।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम् । पश्चादहम् यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ श्रीमद्भागवत पुराण २/९/३२

Volume 4, Issue 1, 2025, p. 71-82, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

सृष्टि से पहले भी मैं ही विद्यमान था, मेरे सिवाय और कुछ भी नहीं था और सृष्टि उत्पन्न होने के बाद जो कुछ भी यह संसार दिखता है, वह भी मैं ही हूँ। सत्, असत् तथा सत्-असत् से परे जो कुछ हो सकता है, वह भी मैं ही हूँ। सृष्टि का नाश होने पर जो शेष रहता है, वह भी मैं ही हूँ।

हमें इसके बारे में चिंता करनी चाहिए क्योंकि मरने के बाद जो कुछ भी होता है वह इस बात से निर्धारित होता है कि हमने मरने से पहले क्या किया था और मृत्यु के समय हमें क्या याद है। वह कहते हैं कि यह अपरिहार्य है इसलिए इससे कोई बच नहीं सकता और सिर्फ़ इसी आधार पर कृष्ण कहते हैं कि भौतिक दुनिया एक दयनीय जगह है। बहुत से लोग इस बात को तब तक नहीं समझ पाते जब तक कि वे आसन्न मृत्यु का सामना नहीं कर लेते, (कभी-कभी उनकी और कभी-कभी दूसरों की) और तभी उन्हें एहसास होता है कि मृत्यु एक समस्या है। वे चाहते हैं कि व्यक्ति ट्रिगर न दबाए या बटन न दबाए या ऐसा कुछ न करे जो उन्हें या उनके परिवार के किसी सदस्य को मार डाले। लेकिन चाहे जो भी हो, मृत्यु से बचना संभव नहीं है, इसलिए कृष्ण कहते हैं कि इसी वजह से भौतिक दुनिया एक दयनीय जगह है। बेशक, अगर यह एकमात्र जगह है जिसके बारे में आप जानते हैं, तो एक अंधा चाचा बिना चाचा से बेहतर है, लेकिन अगर ऐसी जगह रहने का विकल्प है जहाँ कोई नहीं मरता, (सिर्फ आज ही नहीं, बल्कि कभी भी) तो जाहिर है कि हमारी दुनिया इतनी आकर्षक नहीं लगती।

तो कृष्ण कहते हैं कि भले ही मृत्यु जैसी कोई चीज़ न हो, हम एक ऐसी दुनिया में फँसे हुए हैं जहाँ भौतिक प्रकृति ने हमें यह विश्वास दिला दिया है कि हम मर जाएँगे। इसलिए हम इस पर विश्वास करते हैं। लेकिन कृष्ण कहते हैं कि एक बुद्धिमान व्यक्ति माया द्वारा इस मस्तिष्क-धोने से मुक्त हो जाएगा, और जन्म-मृत्यु के भ्रम से बच जाएगा।

बुद्धिमान व्यक्ति जो बुढ़ापे और मृत्यु से मुक्ति के लिए प्रयास कर रहे हैं, वे भक्ति सेवा में मेरी शरण लेते हैं। वे वास्तव में ब्रह्म हैं क्योंकि वे पारलौकिक गतिविधियों के बारे में पूरी तरह से जानते हैं।

> *जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।*
> *ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्म कर्म चाखिलम् ॥7.29॥*

अर्थात्, जो मेरी शरण ग्रहण करते हैं, वे बुढ़ापे और मृत्यु से छुटकारा पाने की चेष्टा करते हैं, वे ब्रह्म, अपनी आत्मा और समस्त कार्मिक गतिविधियों के क्षेत्र को जान जाते हैं।

हालांकि, जो ऐसा नहीं करते हैं, और इंद्रिय तृप्ति के लिए वेदों का अध्ययन करते हैं, भले ही वे तीन वेदों के सिद्धांतों का पालन करते हों, वे संसार से मुक्त नहीं हो सकते।

©Indira Gandhi National Open University

जो लोग वेदों का अध्ययन करते हैं और सोमरस पीते हैं, वे स्वर्ग के ग्रहों की तलाश करते हैं, वे अप्रत्यक्ष रूप से मेरी पूजा करते हैं। पाप कर्मों से शुद्ध होकर, वे इंद्र के पवित्र, स्वर्गीय ग्रह पर जन्म लेते हैं, जहाँ वे ईश्वरीय सुखों का आनंद लेते हैं।

त्रैविद्या माँ सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥9.20॥

अर्थात्, वे जिनकी रुचि वेदों में वर्णित सकाम कर्मकाण्डों में होती है वे यज्ञों के कर्मकाण्ड द्वारा मेरी आराधना करते हैं। वे यज्ञों के अवशेष सोमरस का सेवन कर पापों से शुद्ध होकर स्वर्ग जाने की इच्छा करते हैं। अपने पुण्य कर्मों के प्रभाव से वे स्वर्ग के राजा इन्द्र के लोक में जाते हैं और स्वर्ग के देवताओं का सुख ऐश्वर्य पाते हैं।

जब वे इस प्रकार विशाल स्वर्गीय इंद्रिय सुख का आनंद ले लेते हैं और उनकी पवित्र गतिविधियों के परिणाम समाप्त हो जाते हैं, तो वे फिर से इस नश्वर ग्रह पर लौट आते हैं। इस प्रकार जो लोग तीन वेदों के सिद्धांतों का पालन करके इंद्रिय भोग की तलाश करते हैं, वे केवल बार-बार जन्म और मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥9.21॥

अर्थात्, जब वे स्वर्ग के सुखों को भोग लेते हैं और उनके पुण्य कर्मों के फल क्षीण हो जाते हैं तब फिर वे पृथ्वीलोक पर लौट आते हैं। इस प्रकार वे जो अपने इच्छित पदार्थ प्राप्त करने हेतु वैदिक कर्मकाण्डों का पालन करते हैं, बारबार इस संसार में आवागमन - करते रहते हैं।

अध्याय 8 में कृष्ण ने मृत्यु के बारे में बहुत कुछ कहा है।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मुद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥8.5॥

अर्थात्, जो कोई अपने जीवन के अंत में, केवल मेरा स्मरण करते हुए अपना शरीर त्यागता है, वह तुरन्त मेरे स्वभाव को प्राप्त करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥8.6॥

अर्थात्, हे कुंतीपुत्र, शरीर त्यागते समय मनुष्य जिस भी अवस्था को याद करता है, वह अवश्य ही उस अवस्था को प्राप्त करता है।

©Indira Gandhi National Open University

कृष्ण केवल उन्हीं को याद करने की सलाह देते हैं और इस तरह जन्म और मृत्यु के दायरे से बचकर अमरत्व के दायरे में चले जाते हैं। और जब आप अपना शरीर छोड़ रहे होते हैं, तो आपके मन में जो भी आता है, वह आपकी अगली अवस्था को निर्धारित करता है।

तुरंत हमारा ध्यान उस चीज़ पर चला जाता है जो हमें प्रिय है, जिससे हम सबसे ज़्यादा जुड़े हुए हैं, जिसे हम नहीं चाहते कि कोई नुकसान पहुंचे। इसलिए मृत्यु का समय वह होता है जब हम उन सभी चीज़ों से अलग हो जाते हैं जो हमें प्रिय हैं। हम जिस चीज़ से जुड़े हुए हैं वह हमेशा के लिए गायब हो जाती है। हमने जिसके लिए काम किया है वह सब जा रहा है। जिनसे हम प्यार करते हैं वे सब चले जाएँगे।

इसलिए कृष्ण की भक्ति ही एकमात्र उपाय है। जब तक हमारे मन में कृष्ण के प्रति लगाव और भावना नहीं होगी, तब तक हम उन्हें कैसे याद करेंगे जब सब कुछ बिखर रहा हो? यह जानना कि वे भगवान हैं और अद्‌भुत हैं, अच्छा है, लेकिन जब हम उन सभी चीजों से अलग हो जाते हैं जिनसे हम प्यार करते हैं और जिनके लिए हमने जीवन में काम किया है, तो हमारे दिमाग में क्या आता है? वे चीजें जिनसे हम सबसे ज्यादा जुड़े हुए हैं।

मेरे प्यारे कृष्ण, कृपया मुझे हमेशा अपने पवित्र नाम का जाप करने की याद दिलाएँ, कृपया मुझे विस्मृति में न डालें। आप मेरे भीतर परमात्मा के रूप में बैठे हैं, इसलिए आप मुझे विस्मृति में डाल सकते हैं या आपको याद कर सकते हैं। इसलिए कृपया मुझे विस्मृति में न डालें। कृपया मुझे हमेशा जप करने की याद दिलाएँ, भले ही आप मुझे नरक में भेज दें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, बस जब तक मैं हमेशा हरे कृष्ण का जाप कर सकता हूँ।

यह एक अद्‌भुत दृष्टिकोण है। यह विनम्र, आश्रित, विनम्र, असहाय और समर्पित है और फिर भी आशावादी है। इस तरह का रवैया भौतिक दुनिया में ज़्यादा उपयोगी नहीं है, लेकिन यह कृष्ण को बहुत आकर्षित करता है, यह भक्ति की भावना से आता है और कृष्ण अपने भक्त को कभी नष्ट नहीं होने देंगे। अपरिहार्य का सामना करने के लिए यह सबसे अच्छा तरीका है जो हम कर सकते हैं।

हिंदु सनातन धर्म परंपरा :

हमारे हिंदु सनातन धर्म में तीन ग्रंथों को प्रस्तानत्रयी ग्रंथ माना गया है।

1. श्रीमद्भगवद्गीता को श्रुति प्रस्तानत्रयी ग्रंथ
2. ब्रह्मसुत्र को न्याय प्रस्तानत्रयी ग्रंथ एवं
3. उपनिषद को स्मृति प्रस्तानत्रयी ग्रंथ माना गया है।

©Indira Gandhi National Open University

१३ उपनिषदों को मुख्य माना गया है, यथा – ईशावास्योपनिषद, कठोपनिषद, बृहदारण्यक उपनिषद, ऐतरेयोपनिषद, तैत्रियपोनिषद, केनोपनिषद, छांदोग्यपनिषद, प्रश्नोपनिषद, मांडुक्यपोनिषद, मुंडकोपनिषद, श्वेताश्वतरोपनिषद, मुक्तिका एवं प्राणोपनिषद ये मुख्य उपनिषद कहलाते है। वैसे कुल १०८ उपनिषदों का उल्लेख वेदों में प्राप्त होता है। उपनिषद ये 'उप' शब्द, 'नि' उपसर्ग और 'सद्' धातु (ज्ञान) से मिलकर बना है। उपनिषद का अर्थ बनता है, समीप बैठकर ज्ञान का अर्जन करना।

जब अपौरुष्य वेदों का श्रुति ज्ञान विलुप्त होने लगा, तब उन्हें पुनः पुनर्जागृत करने का आयोजन किया जाना जरुरी हो गया। तब ऋषियों द्वारा दृश्य वेदों के ज्ञान को तात्कालिन आचार्यों ने अथक प्रयास से उपनिषदों के माध्यम से पुनर्जीवित किया।

श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय "सांख्य योग" में भगवान श्रीकृष्ण ने अनेक श्लोकों में इस बात को अनुमोदित किया है।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा |
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ||2-13||

अर्थात्, जिस प्रकार देहधारी मनुष्य, बचपन से युवा अवस्था में पारगमन करता है, और फिर वृद्धावस्था में पहुँचता है, उसी प्रकार आत्मा एक शरीर से दुसरे शरीर में गमन करता है।

न जायते म्रियते वा कदाचिनायं भूत्वा भविता वा न भूय :|
अजो नित्यशाश्वतोऽयं पुराणो : न हन्यते हन्यमाने शरीरे ||2-20||

अर्थात्, आत्मा का ना कभी जन्म होता है ना वह कभी मरता है। ना आत्मा का किसी समय में जन्म या पुनः जन्म ही होता है। क्योंकि आत्मा हमेशा अजन्मा, शाश्वत, अविनाशी और चिरंतर रहता है। शरीर का विनाश होने पर भी उसका विनाश नहीं होता। आत्मा शाश्वत है, जन्म-मृत्यु के परे।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि |
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ||2-22||

अर्थात्, जिस प्रकार कोई पुराने वस्त्रों को उतार कर नये वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा पुराने और जीर्णप्राय: कपडे रूपी शरीर को त्याग कर नया भौतिक शरीर धारण करता है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च |
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ||2-27||

©Indira Gandhi National Open University

अर्थात्, जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु भी अटल है। और जिसकी मृत्यु हो चुकी, उसका जन्म भी निश्चित है। अतः तुम दुःख ना करो।

[3] निरुक्त में षड् भावविकार

अपौरुष्य वेद-मंत्र, जो कि नित्य या ईश्वर-कृत है, इनके अर्थ-चिंतन की परंपरा जब शूरु हुई, तब सर्वप्रथम ऋषियों ने वेद के विशिष्ट शब्दों का संग्रह किया, जिसे निघण्टु के नाम से जाना जाता है, इसी निघण्टु के टीका ग्रंथ का नाम निरुक्त कहलाया। आचार्य वार्ष्यायणि ने इन भावों के अंतर्गत आख्यातों को उत्पत्ति से अवसानपर्यंत षड् भावों में विभाजित किया गया है।

> *षड्भावविकारा इति ह स्माह वार्ष्यायणि*
> १. *जायते* = अर्थात जन्म लेना (उत्पत्ति का द्योतक)
> २. *अस्ति* = होना (सत्ता का होना)
> ३. *विपरिणमते* = परिवर्तित होना (परिणाम का होना)
> ४. *वर्धते* = वृद्धि करना (बढना)
> ५. *अपक्षीयते* = क्षीण होना (अपक्षाय) तथा
> ६. *विनश्यती* = नष्ट होना (विनाश)

उपरोक्त सभी शरीर के बदलते रूप है ना कि आत्मा के। जिसे हम मृत्यु कहते है, वह तो शरीर का बदलता स्वरूप है। कठोपनिषद के अध्याय १, वल्ली २, श्लोक १८ में यम नचिकेता को आत्मा का स्वरूप समझाते है कि

> *न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।*
> *अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ कठ १-२-१८॥*

उस प्रज्ञाशील आत्मा का ना जन्म होता है और ना मृत्यु ही। ना ही वह कहीं से आया है ना कोई वह कोई विशेष व्यक्तित्व का स्वामी है। वह नित्य, अज, शाश्वत व पुराण है। शरीर का ह्रास होता है किंतु आत्मा का नहीं।

जहाँ आत्मा और प्राण दोनों ही मृत्यु के कारक है, वहीं दोनों के स्वरूप में अंतर है। प्राण अर्थात श्वास या साँस, वायु पर निर्भर है, किंतु आत्मा स्वतंत्र है। जब तक शरीर में साँस है तभी तक प्राण है, जब तक प्राण है तभी तक आत्मा इस स्थुल शरीर में सुक्ष्म शरीर के रूप में रहती है। प्राण के निकल जाने पर आत्मा भी इस पुराने चोले को छोड नये भौतिक शरीर में प्रविष्ट हो जाती है। इस प्रकार आत्मा एक चेतना है, जबकी प्राण गिनती की साँसे है। प्राण शरीर के पाँच जगह पर स्थित रहती है। इन्हें पँचप्राण कहते है।

१. *प्राण* :- अर्थात श्वसन प्रणाली = ये हृदय में स्थित होती है।
२. *अपान* :- प्रजनन और उत्सर्जन प्रणाली में स्थित रहती है।

Volume 4, Issue 1, 2025, p. 71-82, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

३. *व्यान*:- माँसपेशीयों में स्थित रहती है।
४. *उदान*:- गले और वाणी में स्थित रहती है।
५. *समान*:- चयापचय पाचनप्रणाली में स्थित रहती है।

इन्हें प्राणायाम और व्यायाम के द्वारा वैज्ञानिक पद्धती से संचालित, संतुलित, उत्तेजित या शांत किया जा सकता है। इससे शरीर के पाँचों विभागों में प्राण-उर्जा को संयमित किया जा सकता है। भौतिक जगत में खुशहाली और स्वास्थ्य के लिये पँचप्राणों को सामंजस्य में रखना जरूरी है।

प्राण ही जीवन शक्ति है :

प्राण शब्द का अर्थ है – जीवन शक्ति। जो कि पँच महाभूतओं में से एक है – वायु। जब हम वायु को शरीर के भीतर लेते है, तब उसे प्राण कहते है। आत्मा का शरीर को छोडना प्राण के साथ-साथ ही क्रियामान होता है। प्राण के निकल जाते ही आत्मा का भी प्रस्थान हो जाता है। मानव-जीवन का मूल आधार है – प्राण। ऐतरेय आरण्यक में "प्राण-विद्या" वर्णन प्राप्त होता है।

[4] *सोऽयमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धस्तद्यथाऽयमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्ध एवं सर्वाणि भूतान्यापिपीलिकाभ्यः प्राणेन बृहत्या विष्टव्यानीत्येवं विद्यात् इति ॥ ऐतरेय-आरण्यक २-१-६-१३ ॥*

प्राण-विद्या को जानने के लिये अरण्य (जंगल) का शांत वातावरण अत्यंत ही उपयोगी है। ऋग्वेद के मंत्रों में प्राण-विद्या का वर्णन है। यह प्राण ही सभी का आधारभूत स्तम्भ है। यह जो आकाश है, वह छन्दरुपी प्राण के द्वारा ही स्थित है। प्राण सभी जगह स्थित है। प्राण से यह संसार घिरा हुआ है। प्राण विश्वधारक है, अतः उसका रक्षक है। वैदिक मंत्रों में 'प्राण' प्राणी के जीवन का रक्षक होने के कारण इसे *" गोपा "* भी कहते है। प्राण ही आयु का कारण माना गया है। क्यों कि जब तक शरीर में प्राणवायु संचारित होती है, तब तक आयु रहती है। प्राण से ही सम्पुर्ण ब्रमाण्ड है। ऐतरेय-आरण्यक में ऐसा कहा गया है कि प्राण के द्वारा अंतरिक्ष तथा वायु की सृष्टि हुई है। प्राण पिता है तथा अंतरिक्ष और वायु उसकी संतान है।

प्राण विद्या के सत्य रुप गुण को बतलाते हुये ऐतरेय आरण्यक में वर्णन है कि जिस प्रकार बैल तो बाँधने के लिये किसी रस्सी को लेते है और उस रस्सी को दो अलग-अलग खूँटों से बाँध देते है। उसी प्रकार प्राण के विषय में कहा गया है कि उस प्राण को फैलाने के लिये दीर्घ रस्सी को *" दाम "* कहते है तथा उसे बाँधने के लिये, अलग-अलग *" नाम "* होते है। इस सामान्य नाम वाले वाणी से सम्पूर्ण स्थावर-जंगम प्राणी बँधे हुए है। अतः जब किसी नाम से किसी पुरुष विशेष को बुलाया जाता है, तो वह पुरुष रस्सी के बंधन से खींचा चला आता है।

Volume 4, Issue 1, 2025, p. 71-82, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

[5] प्राण को ऋषि स्वरुप कहा गया है। प्राण ही से इन मंत्रों का दर्शन करने वाले ऋषियों के आकार विद्यमान है। ऐतरेय-आरण्यक में प्राण को ऋषिरुप का निम्नलिखित दर्शन मिलता है।

१. *शतर्चिन रुप प्राण* :- अर्थात सौ वर्षों तक शरीर को पूजनीय बनाए रखने वाला प्राण।
२. *मध्यम रुप प्राण* :- प्राण- शरीरधारियों में शरीर के बीच में (मध्य में) रहता है।
३. *गृत्समद रुप प्राण* :- सोते समय प्राण, वाक् आदि इंद्रियों को अपने में समाहित कर लेता है। इसलिये प्राण को *"गृत्स"* कहा गया है। और अपान को *"मद "* कहते है। इसलिये गृत्समद रुपी प्राण की उपासना करनी चाहिये।
४. *विश्वामित्र रुप प्राण* :- विश्वामित्र का सम्पूर्ण विश्व – मित्र होता है। भोक्ता अर्थात भोग करने वाला – प्राण का यह सम्पूर्ण विश्व भोग्य करने के कारण मित्र है। अतः प्राण को विश्वामित्र कहा गया है।
५. *वामदेव रुप प्राण* :- चुँकी प्राण, देवताओं में भजनीय है अतः उसे वाम् भी कहते है। इस प्रकार वामदेव कहा गया है।
६. *अत्रि रुप प्राण* :- सम्पूर्ण प्राण समुदाय की पापों से रक्षा करता है, इसलिये वह अत्रि कहलाता है।
७. *भरद्वाज रुप प्राण* :- यह प्राण विभ्रद्वाज है। बाज का अर्थ है – प्रजा। उस प्रजा को यह प्राण अपने प्रवेश द्वारा पोषित करता है। अर्थात जब प्राण शरीर में प्रवेश करता है, तो शरीर या प्रजा का पोषण होता है। प्रजा को पोषित करने के कारण यह प्राण भरद्वाज है।
८. *वसिष्ठ रुप प्राण* :- देवताओं द्वारा ऐसा कहे जाने के कारण कि यह प्राण हम लोगों का वसिष्ठ अर्थात अपने प्रवेश से निवास का हेतु है, अतः इसे वसिष्ठ भी कहा गया है।

शरीर में वाक्, नेत्र, श्रोत्र, घ्राण, स्पर्श इत्यादि इंद्रियों की शक्ति विद्यमान होते हुए भी सभी का अस्तित्व – प्राण तत्त्व पर निर्भर रहता है। अतः प्राण ही समस्त यज्ञरुप है, जो इस प्राण तत्त्व को जान लेता है, वह स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है। मृत्यु पश्चात एहसास को जिन लोगों ने अनुभव किया है, वे इस बात को प्रमाणित करते है।

वेदों से प्राप्त उद्धरण : [6] शुक्ल यजुर्वेद संहिता के श्लोक क्रं. १९७२ के अनुसार -

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयँ सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतश्नुते ॥40-14॥

©Indira Gandhi National Open University

अतः इस विद्या (आत्म-विज्ञान) तथा अविद्या (पदार्थ-विज्ञान) दोनों का ज्ञान एक साथ प्राप्त करो। अविद्या के प्रभाव से मृत्यु को पार करके (पदार्थ-विज्ञान से अस्तित्व बनायें रखकर), विद्या (आत्म-विज्ञान) द्वारा अमृत तत्त्व की प्राप्ति की जाती है।

[6] शुक्ल यजुर्वेद संहिता के श्लोक क्रं. १९७३ के अनुसार –

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मांतँ शरीरम्।

ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतँ स्मर॥40-15॥

यह जीवन (अस्तित्व) वायु-अग्नि आदि (पंचभूतों) तथा अमृत (सनातन आत्म चेतना) के संयोग से बना है। शरीर तो अंततः भस्म हो जाने वाला है। (इसलिये) हे संकल्पकर्ता! तुम परमात्मा का स्मरण करो, अपने सामर्थ्य का स्मरण करो और जो कर्म कर चुके हो, उनका स्मरण करों।

मृत्यु पश्चात एहसास :

मृत्यु पश्चात एहसास के सामान्य तत्व इस प्रकार है -

- शरीर से बाहर का अनुभव : अपने भौतिक शरीर से अलग महसूस करना और ऊपर से दृश्य को देखना।
- सुरंग दृष्टि : अंत में एक चमकदार रोशनी की ओर एक अंधेरी सुरंग से गुजरना।
- स्वागत करने वाला प्रकाश : एक उज्ज्वल, आरामदायक प्रकाश जो व्यक्ति को अपनी ओर खींचता है।
- मृतक प्रियजनों से मिलना : अक्सर शांति और पुनर्मिलन की भावना के साथ, परिचित लोगों को देखना, जो मर चुके हैं, ।
- जीवन की समीक्षा : अपने जीवन का एक विस्तृत दृश्य अनुभव करना, कभी-कभी महत्वपूर्ण क्षणों या पछतावे पर ध्यान केंद्रित करना।
- गहन शांति और प्रेम की भावना : शांति की एक जबरदस्त भावना और खुद से बड़ी किसी चीज़ से जुड़ाव महसूस करना।

उपसंहार :

प्रस्थानत्रयी ग्रंथो में से श्रीमद्भगवद्गीता बहुत विलक्षण है, क्योंकि इसमें ब्रह्मसुत्र और उपनिषद दोनों का ही सार निहित है। गीता उपनिषदों का सार है, किंतु गीता वास्तव में उपनिषदों से भी विशेष है। सभी दर्शन गीता के अंतर्गत है, किंतु गीता किसी दर्शन के अंतर्गत नहीं है। क्योंकि गीता दर्शन पढाती नहीं है, वरन् हमें इसका अनुभव कराती है।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥2.12॥

©Indira Gandhi National Open University

संसार में मात्र दो ही वस्तुएँ है – शरीरी (सत्) और शरीर (असत्)। ये दोनों ही अशोच्य है (अशोच्यान्)। अर्थात् अबोध्य व अकथ्य है। मैं, तुम और ये सभी राजा लोग, पहले भी थे। तात्पर्य यह है कि नित्य तत्त्व सदा ही नित्य है। इसका कभी अभाव था हि नहीं। श्रीकृष्ण कहते है, मेरे और तेरे बहुत से जन्म हुए है, पर मैं उनको जानता हूँ, तुम नहीं। हम सभी वर्तमान में हैं और ये शरीर प्रतिक्षण बदल रहा है। इस तरह शरीरों से अलगाव का अनुभव हमें वर्तमान में ही सीख लेना चाहिये। तात्पर्य यह है कि जैसे भूत और भविष्य में आपनी सत्ता का अभाव नहीं है, ऐसे ही वर्तमान में भी अपनी सत्ता का अभाव नहीं है, इसका अनुभव करना चाहिये। हमारी सत्ता कालातित तत्त्व है। उस कालातित तत्त्व को समझने के लिये ही भगवान ने उपरोक्त श्लोक कहा है।

इस श्लोक में परमात्मा और जीवात्मा के साधर्म्य का वर्णन है। भगवान् कहते है कि मैं कृष्णरूप से, तू अर्जूनरूप से तथा सब लोग राजारूप से पहले भी नहीं थे और आगे भी नहीं रहेंगे, पर सत्तारूप से हम सब पहले भी थे और आगे भी रहेंगे। तात्पर्य यह है कि तीनों शरीर को लेकर अलग-अलग है, पर सत्ता को लेकर एक ही है। जब शरीर नहीं था तब भी सत्ता थी, जब ये शरीर नहीं रहेंगे, तब भी सत्ता रहेगी। एक सत्ता के सिवाय कुछ भी नहीं है।

जैसे भूत और भविष्य से हमारा कोई सम्बंध नहीं है, ऐसे ही वर्तमान से भी हमारा सम्बंध नहीं है। ये तीनों काल के अंतर्गत आते है, जबकि हमारा स्वरूप तो काल से अतीत है। काल का तो खण्ड होता है किंतु स्वरूप (सत्ता) तो अखण्ड है। शरीर को अपना स्वरूप मानने से ही भूत, भविष्य और वर्तमान में फर्क दिखता है। वास्तव में भूत, भविष्य और वर्तमान विद्यमान है ही नहीं!

संदर्भ सूची :

1. श्रीमद्भगवद्गीता – साधक संजीवनी, लेखक – स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस गोरखपुर
2. Sanskrit Non-Traslatables, The importance of Sanskritizing English, by – Rajiv Malhotra & Satyanarayan Dasa Baba. Page no. 94
3. निरुक्त एवं प्रातिशाख्य, MVS-004, Page no. 30
4. आरण्यक परिचय एवमं प्रतिपाद्य, ऐतरेय-आरण्यक 2-1-6-13, MVS-003, Page no. 12
5. आरण्यक परिचय एवमं प्रतिपाद्य, ऐतरेय-आरण्यक 2-1-6-13, MVS-003, Page no. 15
6. यजुर्वेद संहिता, वेदमुर्ति तपोनिष्ठ आचार्य श्रीराम शर्मा द्वारा रचित हिंदी में सरल अनुवाद

©Indira Gandhi National Open University